वैसे एक पुरुषसे दूसरे पुरुषको प्राप्त हो दोष और गुण होते हैं ॥ ५७ ॥ रावणमें दोषको देखकर और आपमें पराक्रमको देखकर विभीषणका यहां आना उचित है और उसकी बुद्धिके अनुगुण भी हैं ॥ ५८ ॥ इस प्रकारके शरणागति धर्मको जाननेवाले हनुमानजीके निर्णय करनेसे मालूम होता है कि प्रपत्तिका देश और कालका नियम नहीं है । इसीसे कहते हैं कि ॥ वही यह देश और काल है ऐसा कहनेसे इसको देश और कालका नियम नहीं है ॥ ३० ॥

अब जगदाचार्यजी यह कहते है कि देश कालादिके नियमाभाव प्रपत्तिके विषयमें हैं यह अर्थद्वय मन्त्रके पहले पदमें देख सकते हैं।

मूल-॥ अयमर्थो मंत्ररत्ने प्रथमपदे द्रष्टव्यः

सूत्र ३१॥

अर्थ—(अयम्) देश और कालके नियमका अभावरूप यह (अर्थः) अर्थ (मंत्ररत्ने) सब उपनिषदोंका सार शीघ्र फल देनेवाला सर्वेश्वरके अभिमत सब मंत्रोंमें उत्कृष्ट द्वय मंत्रका (प्रथमपदे) पहले पदमें (द्रष्टव्यः) देखने योग्य है अर्थात् स्पष्ट है । इस सूत्रसे कहनेका तात्पर्य यह है कि ॥ श्रीमन्नारायण चरणौ ॥ यह जो मंत्ररत्न द्वय मंत्रका पहला पद है तिसमें मतुवर्थ पुरुषकार और उपायके नित्य सम्बन्धका प्रयोजन यह हैं कि किसी देश किसी कालमें किसी संसारी चेतनको भगवत्समाश्रयणकी रुचि उत्पन्न हो तो उसी देश और उसी कालमें भगवत्की शरणागति करनी चाहिये नहीं तो ॥ **चंचलं हि मनः कृष्णः** ॥ भगवद्गी० अ० ६ श्लो० ३४॥ हे कृष्ण भगवान् यह मन बड़ा चंचल है ॥ ३४ ॥ इस भगवद्गीताके पदके अनुसार भगवद्के समाश्रयणसे यह मन हट जायेगा। इससे पहले पदसे यह स्पष्ट मालूम होता है कि प्रपत्तिका देश और कालके नियमका अभाव है। अब यहां पर यह प्रश्न होता है कि द्वय-मंत्रमें कितने अक्षर और कितने पद हैं और द्वयमंत्र मंत्ररत्न है इसमें क्या प्रमाण है। इस प्रश्नका उत्तर लिखा है कि ॥ **पंचविंशाक्षरोमंत्रः पदैः षड्भिः समन्वितः। वाक्यद्वयपरंमंत्रं ज्ञेयं रत्न मनुत्तमम्** ॥ हारीत० ॥ द्वय मंत्रमें पच्चीस अक्षर हैं और छ पद हैं तथा दो खण्ड हैं और सब मन्त्रोंसे श्रेष्ठ होनेसे इसका मन्त्ररत्न नाम है ॥ यह पराशरीय धर्मशास्त्रके

उत्तर खण्डमें भी लिखा है। और पद्मपुराण ब्रह्म नारायणके संवादमें लिखा है कि॥ द्वयेन मंत्ररत्नेन मत्प्रियेण भजेत्सदा॥ मेरा प्रिय मन्त्ररत्न जो द्वयमंत्र है तिससे सर्वदा मेरा भजन करे॥ और इस मन्त्रको त्रिपाद्विभूति महानारायणोपनिषद्में कहा है कि॥ श्रीमन्नारायण चरणौ शरणं प्रपद्ये श्रीमतेनारायणाय नमः॥ त्रिपाद्विभू० अ० ७॥ मं० शरणाग०॥ यही मन्त्ररत्न द्वयमन्त्र है। इस प्रकारके पहले प्रश्नके उत्तर होने पर तो दूसरा यह प्रश्न होता है कि इस सूत्रमें पद किसको कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर महर्षि पाणिनिने दिया है कि॥ सुप्तिङन्तंपदम्॥ व्या० अ० १ पा० ४ सू० १४॥ सुबन्त और तिङन्तको पद संज्ञा होती है॥ १४॥ पूर्वोक्त प्रकारसे एकतिसवां सूत्रका यह भाव है कि मन्त्ररत्न जो द्वयमन्त्र है तिसका जो "श्रीमन्नारायण चरणौ" यह पहिलो पद है तिस पदमें श्री शब्दसे॥ भूमनिन्द्रा प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। संबन्धेऽस्ति विवक्षायां भवन्तिमतुवादयः॥ इस महाभाष्यकी कारिका द्वारा नित्य योगमें॥ तदस्यास्त्यस्मिन्नितिमतुप्॥ व्या० अ० ५ पा० २ सू० ९४॥ इस सूत्रसे मतुप्प्रत्यय होता है। इससे प्रपत्तिका देश और कालके नियमका अभाव साबित होता है। इसीसे कहते हैं कि॥ यह अर्थ मंत्ररत्नके पहले पदमें स्पष्ट है

अब जगदाचार्यजी यह कहते हैं कि प्रपत्तिके प्रकारके नियमका अभाव है।

मू०-॥ प्रकारनियतिर्नास्ति इत्यर्थः सर्वत्र द्रष्टुं शक्यते॥सूत्र ३२॥

अर्थ—प्रपत्तिगे (प्रकारनियतिः) प्रकारके नियम (न) नहीं (अस्ति) है (इति) ऐसा अर्थ (सर्वत्र) प्रपत्ति करनेवाले और सुननेवाले सब लोगोंमें (द्रष्टुम्) देख (शक्यते) सकते हैं। अर्थात्॥ प्रकार नियमाभावको सर्वत्र देख सकते हैं॥ ३२॥

अब लोकाचार्य स्वामीजीने प्रकार नियमाभाव कहां पर देखा है इसको कहते हैं कि।

मूल ॥ द्रौपदी स्नाता न खलु प्रपत्तिमकरोत् अर्जुनो नीचमध्येऽमुमर्थमश्रृणोत् ॥सूत्र ३३॥

अर्थ—(द्रौपदी) रजस्वला द्रौपदीने (स्नाता) स्नान करके (न) नहीं (खलु) निश्चय करके (प्रपत्तिम्) प्रपत्तिको (अकरोत्) किया है (अर्जुनः) और अर्जुनने (नीचमध्ये) नीच आततायियोंके बीचमें (असुम्) इस प्रपत्ति रूप(अर्थम्) अर्थको (अशृणोत्) सुना है। अब यहां पर यह प्रश्न होता है कि विना स्नान किये द्रौपदीने प्रपत्ति की है इसमें क्या प्रमाण है। इस प्रश्नका उत्तर महाभारत के सभापर्वमें लिखा है कि ॥ साकृष्यमाणानमितांगयष्टिःशनैरुवाचाथरजस्वलाऽस्मि। एकंचवासो ममन्दबुद्धे सभांनेतुं नार्हसिमामनार्य ॥ महाभा० सभापर्व० २ अ० ६७ श्लो० ३२॥ दुःशासनके खिंचनेसे नई हुई शरीरवाली द्रौपदीने धीरेसे कहा कि मैं रजस्वला और एक वस्त्रवाली हूं इससे हे मन्द बुद्धे अनार्य तुम मुझको सभामें लेजानेके योग्य नहीं हो ॥ ३२ ॥ इससे साबित होता है कि द्रौपदी रजस्वला थी स्नान नहीं किया था उसी समयमें प्रपत्ति की है ॥ गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥ महाभा० सभाप० २ अ० ६८ श्लो० ४१॥ कौरवैः परिभूतां मां किंन जानासि केशव। हे नाथ रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन । कौरवार्णवमग्नांमामुद्धरस्वजनार्दन ॥४२॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन। प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्ये ऽवसीदतीम् ॥४३॥ हे गोविन्द हे द्वारिका वासिन् हे कृष्ण हे गोपीजनप्रिय ॥ ४१ ॥ हे केशव कौरवोंसे सभामें नंगी की जानेवाली मुझको आप नहीं जानते हैं हे नाथ हे रमानाथ हे रमानाथ हे व्रजनाथ हे आर्तिनाशन हे जनार्दन कौरवरूपी समुद्रमें डूबती हुई मुझको उद्धार कीजिये ॥ ४२ ॥ हे कृष्ण हे कृष्ण हे महायोगिन् हे विश्वात्मन् हे विश्वभावन् हे गोविन्द कुरुओंके बीचमें नंगी की जानेवाली मुझको बहुतसा वस्त्र समर्पण करके रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥ इससे साबित हो गया कि विना स्नान किये हुए द्रौपदीने प्रपत्ति की है। और भगवद्विमुखनीच दुर्योधनादि आततायियोंके बीचमें अर्जुनने

सर्व धर्मान्परित्यज्यमामेकं शरणं व्रज। अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ भगवद्गी० अ० १८ श्लो० ६६॥ इस प्रपत्तिको सुना है। इससे मालूम होता है कि प्रपत्तिका श्रवण नीचोंके बीचमें नहीं करना चाहिये। इस नियमका अभाव है। इससे कहते है कि॥ द्रौपदीने स्नान करके प्रपत्ति नहीं की है और अर्जुनने नीचोंके बीचमें इस प्रपत्तिरूप अर्थको सुना है॥ ३३॥

अब श्रीवचनभूषणकार इसका प्रयोजन कहते हुए इस अर्थको समाप्त करते हैं कि।

मू० ॥ तस्माच्छुद्ध्यशुद्धी उभे अपि न संपाद्ये स्थित प्रकारेणैवधिकारी भवति ॥सूत्र ३४॥

अर्थ (तस्मात्) इससे प्रपत्तिके अनुष्ठान समयमें और सुननेके समयमें ये दोनों द्रौपदी तथा अर्जुनको ऐसा करनेसे (शुद्धअशुद्धी) शुद्धि और अशुद्धि (उभे) ये दोनों (अपि) भी (न) नहीं (संपाद्ये) देखना अर्थात् प्रपत्तिके समय अशुद्धको शुद्धिकी अपेक्षा नहीं करना और शुद्धको अशुद्धिकी अपेक्षा नहीं करना (स्थितप्रकारेण) स्थित प्रकारसे (एव) निश्चय करके (अधिकारी) प्रपत्तिका अधिकारी (भवति) होता है। अर्थात् प्रपत्ति समयमें अशुद्ध या शुद्ध जैसा हो वैसा ही प्रपत्तिका अधिकारी होता है। इसीसे कहते हैं कि॥ इस कारण शुद्ध और अशुद्ध नहीं देखना स्थित प्रकारसे अधिकारी होता है॥ ३४॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी पूर्वोक्त अर्थके विषयमें यथार्थ वक्ताके वचनको स्मरण कराते हैं।

मूल॥ अत्र वेल्वेट्टिप्पिल्लै इत्यस्य कलिवैरिदासोक्ता वार्ता स्मर्तव्या॥ सूत्र ३५॥

अर्थ— (अत्र) इस प्रपत्तिके विषयमें (वेल्वेट्टिप्पिल्लै) वेल्वेट्टिप्पिल्लै नाम वाला (इति) इस (अस्य) महात्माके प्रति (कलिवैरिदासोक्ता) कलिवैरि स्वामीजी की कही (वार्ता) वार्ता (स्मर्तव्या) स्मरण करने योग्य है। वह वार्ता ऐसी है वेल्वेट्टिप्पिल्लै नामवाले महात्मा कलिवैरिस्वामीजीसे पूछते हैं कि हे स्वामिन् श्रीरामजी समुद्रकी शरण लेनेपर॥ ततः सागरवेलायां दर्भानास्तीर्यराघवः

अंजलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ वाल्मीकि रा० युद्धकां० ६ स० २१ श्लो० १॥ इसके बाद श्रीरामजीने समुद्रके तटपर कुशोंको डसा करके अंजलि पूरब मुंह करके शयन किया ॥ १ ॥ इन नियमों साथ शरणागति की है। इससे ज्ञात होता है कि कर्मादि उपायोंकी तरह प्रपत्तिको भी किसी नियमकी अपेक्षा है। ऐसा पूछनेपर कलिवैरि स्वामीजी कहते हैं कि श्रीरामजीमें देखे हुए नियम इस प्रपत्तिके स्वाभाविक नहीं है किन्तु प्रपत्ति करनेवाले श्रीरामजीके स्वभावसे आया है। श्रीरामजीको विभीषण कहते हैं कि। समुद्रं राघवो राजा शरणं गंतुमर्हति ॥ वाल्मीकि रा० कां० स० १९ श्लो० ३०॥ राघव राजा समुद्रकी शरणागति करें ॥३० ॥ ऐसा उपदेश देनेवाले विभीषण श्रीरामजीके शरणागत करनेके समय समुद्रमें स्नान करके नहीं गये हैं। इससे यह मालूम होता है कि श्रीरामजीने इक्ष्वाकुके वंशके और आचार प्रधान होनेसे अपने नियमोंके साथ शरणागति की है और विभीषण राक्षस जातिका होनेसे स्थिति प्रकारसे शरणागित की हैं। इसीको कहते हैं कि ॥ इस स्थलमें वेल्वेट्टिप्पिल्लै महात्मासे कलिवैरि स्वामीजी की वार्ताको स्मरण करे ॥ ३५ ॥

अब जगदाचार्यजी अधिकारीके नियमके अभावको कहनेकी इच्छासे तज्जिज्ञासुकर्तृक प्रश्नको कहते हैं कि ॥

मूल-॥ अधिकारिनियमाभावः कथमितिचेत् ॥सूत्र ३६॥

अर्थ—(अधिकारिनियमाभावः) प्रपत्तिके अधिकार नियमका अभाव (कथम्) कैसा (इति) ऐसा (चेत्) यदि प्रश्न हो तो उसका उत्तर सैतिसवें सूत्रमें लिखा है। इससे कहते है कि ॥ यदि ऐसा हो तो अधिकारी नियमका अभाव कैसा॥३६ ॥

अब लोकाचाय स्वामीजी अधिकारी नियमके अभावको कहते हैं।

मूल॥ धर्मपुत्रादयः द्रौपदी काकः कालीयः श्रीगजेन्द्रः श्रीविभीषणः स्वामी बालस्वामी एतत्प्रभृतयः शरणं गता इत्यधिकारिनियमो नास्ति ॥ सू० ३७॥

अंजलिं प्राङ्मुखः कृत्वा प्रतिशिश्ये महोदधेः ॥ वाल्मीकि रा० युद्धकां० ६ स० २१ श्लो० १॥ इसके बाद श्रीरामजीने समुद्रके तटपर कुशोंको डसा करके अंजलि पूरब मुंह करके शयन किया ॥ १ ॥ इन नियमों साथ शरणागति की है। इससे ज्ञात होता है कि कर्मादि उपायोंकी तरह प्रपत्तिको भी किसी नियमकी अपेक्षा है। ऐसा पूछनेपर कलिवैरि स्वामीजी कहते हैं कि श्रीरामजीमें देखे हुए नियम इस प्रपत्तिके स्वाभाविक नहीं है किन्तु प्रपत्ति करनेवाले श्रीरामजीके स्वभावसे आया है। श्रीरामजीको विभीषण कहते हैं कि। समुद्रं राघवो राजा शरणं गंतुमर्हति ॥ वाल्मीकि रा० कां० स० १६ श्लो० ३०॥ राघव राजा समुद्रकी शरणागति करें ॥३० ॥ ऐसा उपदेश देनेवाले विभीषण श्रीरामजीके शरणागत करनेके समय समुद्रमें स्नान करके नहीं गये हैं। इससे यह मालूम होता है कि श्रीरामजीने इक्ष्वाकुके वंशके और आचार प्रधान होनेसे अपने नियमोंके साथ शरणागति की है और विभीषण राक्षस जातिका होनेसे स्थिति प्रकारसे शरणागित की हैं। इसीको कहते हैं कि ॥ इस स्थलमें वेल्वेट्टिप्पिल्लै महात्मासे कलिवैरि स्वामीजी की वार्ताको स्मरण करे ॥ ३५ ॥

अब जगदाचार्यजी अधिकारीके नियमके अभावको कहनेकी इच्छासे तज्जिज्ञासुकर्तृक प्रश्नको कहते हैं कि ॥

मूल-॥ अधिकारिनियमाभावः कथमितिचेत्

॥सूत्र ३६॥

अर्थ—(अधिकारिनियमाभावः) प्रपत्तिके अधिकार नियमका अभाव (कथम्) कैसा (इति) ऐसा (चेत्) यदि प्रश्न हो तो उसका उत्तर सैंतिसवें सूत्रमें लिखा है। इससे कहते है कि ॥ यदि ऐसा हो तो अधिकारी नियमका अभाव कैसा॥३६ ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी अधिकारी नियमके अभावको कहते हैं।

मूल॥ धर्मपुत्रादयः द्रौपदी काकः कालीयः श्रीगजेन्द्रः श्रीविभीषणः स्वामी बालस्वामी एतत्प्रभृतयः शरणं गता इत्यधिकारिनियमो नास्ति ॥ सू० ३७॥

राघवं शरणं गतः ॥वाल्मी० रा० युद्धकां० ६ स० १७ श्लो ६ ॥ मैं उस रावणसे कठोर वचन सुन नौकरकी तरह अपमानित हो पुत्र और स्त्रिओंको छोड़ श्रीराघवजीकी शरणमें आया हूं ॥ १६॥ और सर्व रक्षक श्रीरामजीने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ ततःसागरवेलायां दर्भानास्तीर्य राघवः अंजलिं प्राङ्मुखःकृत्वाप्रतिशिश्येमहोदधेः ॥ वाल्मी० रा० युद्धकां ६ स० २१ श्लो० १॥ इसके बाद समुद्रके तट पर कुशोंको डसा करके श्रीरामजीने पूर्वाभिमुख हो हाथ जोड़ करके समुद्रकी शरणागति की॥ १॥ तथा नित्यविभूतिमें सदा अनुचर हो कार्य करने वाले श्री लक्ष्मणजीने शरणागति कीहै। यह लिखा है कि ॥ सभ्रातुश्चरणौ गाढं निपीड्य रघुनन्दनः। सीतामुवाचातिशयां राघवं च महाव्रतम् ॥ वाल्मी० रा० अयो० कां० २ स० ३१ श्लो० २॥ श्री लक्ष्मणजीने भ्राता श्रीरामजी के चरणोंको गाढ़ आलिंगन करके अतिशया सीतासे और महाव्रत श्री रामजीसे कहा ॥२॥ और वैखानस वालखिल्या आदि मुनियोंने शरणागति की हैं यह लिखा है कि। ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः। परिपालय नोराम वध्य मानान्निशाचरैः ॥ वाल्मीकि रा० अरण्यकां० ३ स० ६ श्लो० १६॥ निशाचरोंसे पीड़ित हम सब हे श्री रामभद्र सर्वरक्षक आपकी शरणागति करनेके लिये उपस्थित हैं। इससे हम सबोंकी रक्षा कीजिये ॥ तथा देवतागणने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ प्रणाम प्रवणा नाथ दैत्यसैन्य पराजिताः। शरणं त्वामनु प्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ॥ हे नाथ दैत्योंकी सेनासे पराजित हो प्रणाम करते हुए संपूर्ण देवतागण आपकी शरणमें आये हैं ॥ और वानरोंकी सेनाने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ राक्षसैर्वध्यमानानां वानराणांमहाचमूः। शरण्यं-शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥ राक्षसोंसे पीड़ित वानरोंकी महासेना रक्षक दशरथ कुमार श्रीरामजीकी शरणमें गयी ॥ तथा गोप और गोपियोंने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ अत्यासारातिवातेन पशवोजातवेपनाः। गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥ श्री

अनु० १ मं० ३०॥ हे भूमि तुमको अनन्त भुजावाले श्रीकृष्ण वाराहने उद्धार किया है ॥ ३० ॥ और नृसिंहावतारको भी लिखा है कि ॥ वज्रनखाय विद्महेतीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि ॥ तैत्ति० अ० प्र० १ अनु० १ मं० ३१॥ वज्रनखको हम सब जानते है तीक्ष्ण दांतवाले नृसिंहको हम सब ध्यान करते हैं ॥ ३१ ॥ उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् । नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्यु मृत्युं नमाम्यहम् ॥ त्रिपाद्विभूति महानारायणोप० अध्या० ७ नृसिंह मंत्र ॥ इससे नृसिंहावतार साबित होता है । और अब वामनावतारमें प्रमाण देखिये । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम् । समूढमस्यपांसुरेस्वाहा ॥ यजु० अ० ५ मं० १५॥ त्रिविक्रमावतार धारी विष्णुने इस ब्रह्माण्डको नापा और तीन प्रकारसे चरण रखा इसके धूलियुक्त पदमें समस्त संसार सम्यक् अन्तर्भूत होता है ॥ १५ ॥ यह मंत्र ऋग्यजुः साम इन तीनों वेदोंमें है और जो मैं इसका अर्थ करता हूं। यही निरुक्तकार मुनियास्काचार्यका भी अर्थ है। वामनोहविष्णुरास ॥ शत० कां० १ अ० २ ब्रा० २ कं० ५॥ वामन साक्षात् विष्णु ही थे ॥ ५ ॥ मध्येवामन मासीनं विश्वेदेवा उपासते ॥ कठो० अ० २ वल्ली० ५ मं० ३॥ मध्यमें बैठे हुए वामनको विश्वेदेव उपासना करते हैं ॥ ३ ॥ तथा श्रीरामावतारमें प्रमाण देखिये ॥ भद्रोभद्रया सचमान आगात स्वसारंजारो अभ्येति पश्चात् । सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नु शद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात् ॥ साम० उत्तरार्चिक० १५ अ० २ खं० १ सू० ३॥ भजन करने योग्य रामभद्र सीता सहित सज्जित होकर दण्ड कारण्यको आये तब अंगुलीको अर्थात् सीता के हाथको पकड़नेको रावण रामके परोक्षमें आया। तब रावणके मारनेके पीछे अच्छे चिन्होंसे दीप्तिमान् वर्णोंसे उपलक्षित द्योलोककी साधनभूत रामकी स्त्री सहित अग्निदेव रामके सामने उपस्थित हुआ। अर्थात् जानकी शुद्ध है यह कह कर जानकीको समर्पण किया ॥३॥ अर्वाची सुभगे भवसीते वन्दा महेत्वा यथानः सुभगासमि यथानः सुफलाससि ॥ ऋ० मं० ३

अर्थ. (धर्मपुत्रादयः) युधिष्ठिर भीम नकुल सहदेव (द्रौपदी) द्रौपदी (काकः) जयन्त काक (कालीयः) कालीय नाग (श्रीगजेन्द्रः) श्रीगजेन्द्र (श्रीविभीषणः) श्रीविभीषण (स्वामी) श्रीरामजी (बाल स्वामी) श्रीलक्ष्मण जी (एतत्प्रभृतयः) ये सब और प्रभृति शब्दसे सब मुनि तथा देवतागण और बानरोंकी सेना आदिने (शरणम्) भगवतकी शरणागति (गताः) की है (इति) इससे (अधिकारि नियमः) अधिकार नियम (न) नहीं (अस्ति) है। अर्थात् क्षत्रिय जातिके युधिष्ठरादिकी शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ **द्रौपद्या सहिताः सर्वे नमश्चक्रुर्जनार्दनम् ॥** द्रौपदी के सहित पांचों पांडव जनार्दन श्रीकृष्णजीके शरणमें गये ॥ तथा स्त्री द्रौपदीने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ **कृष्ण कृष्ण महायोगिन्वश्वात्मन्विश्व भावन। प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥ महाभार० सभापर्व० २ अ० २८ श्लो० ४३॥** हे कृष्ण भगवान् हे महायोगिन् हे विश्वात्मन् हे विश्वभावन हे गोविन्द कुरुओंके बीचमें नंगी की जाती हुई प्रपत्ति करनेवाली मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥ और महापराधी जयन्तकी शरणागत की है यह लिखा है कि ॥ **सपित्रा च परित्यक्तः सर्वैश्च परमर्षिभिः। त्रींल्लोकान्संपरिक्रम्य तमेवशरणं गतः। वाल्मीकि रा० सु० कां० ५ स० ३८ श्लो० ३२॥** वह जयन्त काक अपने पिता इन्द्रसे और सब महर्षियोंसे तिरस्कृत हो तीनों लोकोंमें घूमकर उस श्रीरामजीकी ही शरणमें गया ॥ ३२ ॥ तथा तिर्यग्योनिवालेकी कालीयनागने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ **सोहंतेदेव देवेश नार्चनादौ स्तुतौ न च सामर्थ्यवान् कृपामात्र मनोवृत्तिः प्रसीदमे ॥** हे देवदेवेश आपकी पूजा और स्तुति करनेमें मैं समर्थ नहीं हूं केवल निर्हेतु दयासे मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये ॥ कालीय नागने शरणागति की है यह श्रीमद्भागवत दशमस्कंधके सोलहवें अध्यायमें भी लिखा है। और पशु योनिवाले श्रीगजेन्द्रने शरणागति की है यह लिखा है कि ॥ ॥ **परमापदमापन्नो मनसा चिन्तयद्धरिम्। सतु नागवरः श्रीमान् नारायणपरायणः ॥** परम् आपत्तिको प्राप्त हो श्रीनारायणपरायण श्रीगजेन्द्र मनसे श्रीहरिको शरणागतिरूप स्मरण किया ॥ श्रीगजेन्द्रने शरणागति की है यह श्रीमद्भागवत अष्टम् स्कन्धके तीसरे अध्यायमें लिखा है। तथा राक्षस जातिवाले श्रीविभीषणने शरणागति की है यह लिखा **सोऽहंपरुषितस्तेन दासवच्चावमानितः। त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च**

भद्भाग० स्कं० १० अ० २५ श्लो० ११॥ अत्यन्त वृष्टि और पवनसे कांपते हुए पशु और गोप गोपियोंने श्रीकृष्ण की शरणागति की ॥ ११ ॥ और इसी प्रकारसे मुचुकुन्द राजा तथा माधवी और कालीय नागकी स्त्रियां आदिने शरणागति की है। ग्रन्थके विस्तारके भयसे अधिक नहीं लिखता हूं। पूर्वोक्त प्रकारसे स्पष्ट साबित होता है कि अधिकारीका नियम नहीं है इसीसे कहते हैं कि ॥ धर्म पुत्रादिक द्रौपदी काक कालीय श्रीगजेन्द्र श्री विभीषण श्रीरामजी और श्रीलक्ष्मणजी प्रभृतिने शरणागति की हैं इससे अधिकारीका नियम नहीं है ॥ ३७ ॥

अब जगदाचार्यजी फलके नियमाभावको कहनेकी इच्छासे तज्जिज्ञासुकर्तृक प्रश्नको अनुवाद करते हैं कि।

मूल- ॥ फलनियमाभावः कथमिति चेत् ॥सूत्र ३८॥

अर्थ—प्रपत्तिके (फलनियमाभावः) फलके नियमका अभाव (कथम्) कैसा (इति) ऐसा (चेत्) यदि प्रश्न हो तो इसका उत्तर उनतालिसवें सूत्रमें लिखा है। इसीसे कहते हैं कि ॥ फलके नियमका अभाव कैसा ऐसा यदि ॥ ३८ ॥

अब श्रीवचनभूषणकार प्रपत्ति करनेवालोंके फलोंको कहते हैं।

मूल ॥ धर्मपुत्रादीनां फलं राज्यं द्रौपद्याः फलं वस्त्रं काक कालीययोः फलं प्राणः श्रीगजेन्द्रस्य फलं कैंकर्यं श्री विभीषणस्य फलं राम प्राप्तिः स्वामिनःफलं समुद्रतरणं बालस्वामिनः फलं रामानुवृत्तिः ॥सूत्र ३९॥

अर्थ (धर्मपुत्रादीनाम्) युधिष्ठरादि पांचों पांडवोंकी (फलम्) प्रपत्ति करनेका फल (राज्यम्)राज्य प्राप्ति है और (द्रौपद्याः) द्रौपदीकी (फलम्) प्रपत्ति करनेका फल (वस्त्रम्) वस्त्र प्राप्ति है तथा (काककालीययोः) जयन्तकाक और कालीयनागकी (फलम्) प्रपत्ति करनेका फल (प्राणः) प्राण प्राप्ति है और (श्रीगजेन्द्रस्य) श्रीगजेन्द्रके(फलम्) प्रपत्ति करनेका फल (कैंकर्यम्) भगवत्के कैंकर्य प्राप्ति है तथा (श्रीविभीषणस्य) श्रीविभीषणकी (फलम्)फल प्रपत्ति करनेका (रामप्राप्तिः) श्रीरामजीकी प्राप्ति है। (स्वामिनः) श्रीरामजीको (फलम्)प्रपत्ति

संवत्सर नामको उत्पन्न की इसीसे कहते हैं कि ईश्वर संवत्सर है। देखो संवत्सर चार अक्षर हैं और प्रजापतिमें भी चार अक्षर हैं इसी कारण संवत्सर ईश्वरकी मूर्ति है॥ १॥ कासीत प्रमा प्रतिमाकिं निदानमाज्यंकिमासीत्परिधिः क असीच्छन्दःकिमासीत् प्रउगं किमुक्थं यदेवा देवमयन्जतविश्वे ऋ० मं० ८ अ० ७ व० १८ मं० ३॥ सबकी यथार्थ ज्ञान बुद्धि कौन हैं। मूर्ति कौन है। सब संसारका कारण कौन है। घृतके समान सार जानने योग्य कौन है। और सीमा कौन हैं। छन्द कौन है। स्वतन्त्र तथा स्तुति करने योग्य कौन है यहां तक इस मंत्रमें प्रश्न करके अन्तमें सबका उत्तर है कि जिस परमेश्वरको इन्द्रादि देवता पूजते हैं॥ ३॥ अदोयद्दारुप्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्। तदारभस्वदर्हुणो ऽनेनगच्छ परस्तरम्॥ऋ० अष्ट० ८ अ० ८ सू० १३ मं० ३॥ विप्रकृष्ट देशमें वर्तमान पुरुष निर्माण रहित जो काठकी बनी हुई जगन्नाथकी मूर्ति समुद्रके तटपर वर्तमान है उस काठकी मूर्तिको अवलम्ब या उपासना करो। जो किसीसे भी हनन नहीं होती उसकी उपासना करनेसे अतिशय उत्कृष्ट त्रिपाद्विभूति मोक्षको प्राप्त होओ॥ ३॥ और यह शाकल शाखामें भी लिखा है कि॥ यद्दार्वमानुषं सिन्धोस्तीरे तीर्णं प्रदृश्यते। तदालभ्याथ परं पदं प्राप्नोति दुर्लभम्॥ शाकलशाखा० ।८। ८।१३।३॥ जो यह अमानुष दारुमय पुरुषोत्तमकी मूर्ति समुद्र तटपर जगन्नाथ नामसे दृश्यमान है उसकी उपासनासे दुर्लभ परंपद वैष्णव लोक प्राप्त होता है॥ ३॥ अर्चत प्रार्चत प्रिय मेधासो अर्चच। अर्चन्तु पुत्रका उतपुरं नधृष्णवर्चे न॥ ऋ० अष्ट० ६ अ० ५ सू० ५८ मं० ८॥ हे प्रिय मेध सम्बन्धी वा प्रियमेधाके गोत्रवाले तुम परमात्मा का पूजन करो। स्तुति विशेषसे पूजन करो। तुम सब पूजन करो और पुत्र भी पूजा करें। जैसे धर्षणशील पुरुष को पूजते हैं, वैसे तुम पूजो॥ ८॥ स्नात्वाशुचो गोमयेनोपलिप्य प्रतिकृतिं कृत्वा अक्षतपुष्पैर्यथालाभ मर्चयेत्॥ बौधायनकल्प० परिचर्या प्रक० सू० २॥ स्नानकर पवित्र

अर्थ—(पूर्णम्) पूर्ण है (इति) ऐसा उपनिषदोंमें (उक्तत्वात्) कहनेसे अर्चावतारमें (सर्वे) सब (गुणाः) कल्याण गुण (पुष्कलाः) पूर्ण हैं। अर्थात् बृहदारण्यकोपनिषद्के शान्ति पाठमें लिखा है कि॥ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते । पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्णमेवाव शिष्यते ॥ विप्रकृष्ट अर्चावतार पूर्ण है। और संनिकृष्ट अर्चावतार पूर्ण है। पूर्ण अर्चावतारसे पूर्ण कल्याण गुण कहे जाते हैं पूर्ण अर्चावतारसे पूर्ण कल्याण गुणोंको लेकर पूर्ण ही बचता है॥ इससे साबित होता है कि अर्चावतारमें सब गुण पूर्ण हैं। इसीसे कहा है कि॥ पूर्णम् ऐसा कहनेसे सब कल्याण गुण अर्चावतारमें पूर्ण हैं॥ ४३॥

अब श्रीवचनभूषणकार प्रपत्तिके अवश्यापेक्षित सौलभ्यादि गुणोंको अर्चावतारमें कहते हैं।

मूल॥ प्रपत्तेरपेक्षिताः सौलभ्यादयोऽन्धकारव्याप्ते गृहेदीपवत्प्रकाशन्ते॥सूत्र ४४॥

अर्थ—(प्रपत्तेः)प्रपत्तिके(अपेक्षिताः) उपायतया स्वीकार करनेके समयमें अपेक्षित (सौलभ्यादयः) देखकर आश्रयण करनेके लिये सौलभ्यगुण और आदिशब्दसे परत्व देख नहीं हटनेके लिये सौशील्य गुण तथा कार्य करेंगे ऐसा विश्वासके लिये स्वामित्व गुण और दोषको देखकर न डरनेके लिये वात्सल्य गुण (अन्धकारव्याप्ते) अन्धकारसे व्याप्त (गृहे) घरमें (दीपवत्) चिराकके समान अर्चावतारमें (प्रकाशन्ते) प्रकाशते हैं। अर्थात् कहनेके तात्पर्य यह हैं कि परब्रह्ममें सब गुण होनेपर भी परमसाम्यापन्न नित्य और मुक्तोंको दर्शन देनेके स्थल होनेसे दिनकी दियाके समान प्रकाश रहित होते हैं। और अर्चावतार स्थलमें अति नीच संसारियोंको दर्शन देनेसे अन्धकारमें दीपककी तरह अत्युज्वल हो प्रकाशते हैं। इसीसे कहा है कि॥ प्रपत्तिके अपेक्षित सौलभ्यादि गुण अन्धकार विशिष्ट घरके दीपकके समान अर्चावतारमें प्रकाशते हैं॥ ४४॥

अब जगदाचार्यजी सौलभ्यादि गुण अर्चावतारमें प्रकाशते हैं इस उक्तिको प्रतिपादन करते हैं।

च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० अ० ४० मं० ८॥ वह परमेश्वर चारो तरफसे प्राप्त होता है। वह शुद्ध निर्मल प्रकाश स्वरूप है तथा प्राकृत शरीर से रहित है और प्राकृत छिद्र तथा नाड़ी समूहसे वर्जित है और कवि मनीषी तथा सर्वोपरि वर्तमान है और आप ही वह परमात्मा अपनी विचित्र शक्तिसे रामकृष्णादिरूपसे होता है इससे स्वयंभू है और वह परमात्मा यथार्थ अर्थोंको बहुत वर्षोंसे विभाग करता हुआ ॥८॥ इस मंत्रमें "अकायम्" इस पदसे प्राकृत शरीरसे रहित परमात्मा है यही अर्थ है अन्यथा यदि ऐसा इसका अर्थ नहीं मानें गे तो ॥ **चन्द्रमा मनसोजातश्चक्षोः सूर्योऽजायत श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निर जायत। यजु० अ० ३१ मं० १२॥** परमेश्वरके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुआ नेत्रसे सूर्य उत्पन्न हुआ और कानसे वायु तथा प्राण उत्पन्न हुए और मुखसे अग्नि उत्पन्न हुए ॥१२॥ इस मंत्रमें जो मन आंख कान मुखसे उत्पत्ति लिखा है इससे विरोध पड़ेगा इससे "अकायम् अव्रणम् अस्नाविरम्" ॥ इन पदोंका यही अर्थ है कि प्रकृति सम्बन्धी परमेश्वरका शरीर या छिद्र या नाड़ी समूह नहीं है। स्वेच्छामय दिव्य शरीर तो परमात्माका है ही। अतः अपनी इच्छासे ईश्वर अवतार धारण करते हैं। अब यहां पर कई एक सज्जन जिनके चित्तमें वेदका भी गौरव नहीं है वे कोग यह कहते हैं कि यदि आप युक्ति द्वारा हमारे प्रश्नोंका उत्तर दे दीजिये तो हम ईश्वरका अवतार मान लेंगे। प्रायः उनके प्रश्नोंका उत्तर आगे भक्तोंके मनोरञ्जनके लिये मैं लिखता हूं। पहला प्रश्न यह है कि ईश्वरको अवतार धारण करनेकी क्या आवश्यकता है। इस प्रश्न का उत्तर भगवद्गीतामें लिखा है कि ॥ **परित्राणाय साधूनां. विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ भगवद्गी० अ० ४ श्लो० ८॥** साधुओंकी रक्षा करनेके लिये और बुराकर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा अच्छे प्रकारसे धर्म स्थापन करनेके लिये युग युगमें मैं अवतार लेता हूं ॥८॥ इस प्रकार पहले प्रश्नका उत्तर होने पर तो दूसरा प्रश्न होता है कि यदि ईश्वर अवतार धारण करेगा तो कर्मबन्धनके बिना किस प्रकार शरीर ग्रहण कर लेगा। इस प्रश्नका उत्तर यह है कि जैसे राजा जेल में विना अपराधके जाता है, उसके वहा जानेमें कानून तोड़नेका अपराध हेतु नहीं है किन्तु कैदियोंके ऊपर जो दया है वही हेतु है इसी प्रकारसे जगदीश्वर दयाको

८। वर्ग ६ ॥ हे राक्षसोंका अन्त करनेवाली सुभगे जानकी मैं तुमको प्रणाम करता हूं। मुझे सुभग ऐश्वर्यको दो। प्रतिपक्षका नाश करो मुझपर अनुकूल रहो ॥५॥ इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तांपूषानुयच्छतु ॥ ऋ० मं० ३। ८। ६ ॥ श्रीरामजी सीताको प्राप्त करें और जनक सीताको प्रदान करें ॥ ६ ॥ और श्रीकृष्णावतारमें प्रमाण देखिये ॥ कृष्णं त एमरुशानः पुरो-भाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषाभिदेकम्। यदूप्रवीता दधतेह गर्भं सद्यश्चि-ज्जातो भवसीदुदूतः ॥ ऋ० मं० ४ सू० ७ अ० १ मं० ६॥ हे भूमन् आपका जो सत्यानन्द चिन्मात्र रूप है तथा रुद्ररूपसे तीन पुरको नाश करनेवाला वा स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरको ग्रसनेवाला रूपतुरीयात्मा तिस कृष्ण भारूपको हम प्राप्त होवें। जिस आपके स्वरुपकी एक ही अर्चि अर्थात् ज्वाला-वत् अंशमात्र जीव अनेक देहोंमें भोक्तृ रूपसे वर्तमान हैं और जो कृष्ण भावको निगडग्रस्तदेवकी गर्भरूपसे धारण करती हुई हे भूमन् आप प्रसिद्ध ही गर्भसे प्रादुर्भूत होकर माताके पाससे पृथक् हुए ॥ ६ ॥ एतद्घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वोवाच ॥ छान्दोग्यो प० प्रपा० ३ अ० ३ खं० १७ मं० ६॥ यह उपदेश घोर आंगिरसने देवकीके पुत्र श्रीकृष्णजी से कहकर मुझसे कहा ॥ ६ ॥ और भी देखिये वेदान्त सूत्रमें वेदव्यास महर्षि कहते हैं कि ॥ अपिच संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ वेदान्त० अ० ३ पा० २ सू० २४ ॥ और वह अव्यक्त ब्रह्म आराधनामें या आरा-धना करनेपर व्यक्त देखनेके योग्य हो जाते हैं। यह श्रुति और स्मृतिसे सिद्ध है। इन पूर्वोक्त वैदिक प्रमाणोंसे ईश्वरका अवतार स्पष्ट साबित होता है। वेदसे ईश्वरका अवतार सिद्ध होनेपर तो यह प्रश्न होता है कि यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके आठवें मन्त्रमें परमेश्वरको अकाय लिखा है और आप अवतार प्रति-पादन करते हैं तो यह श्रुतिका विरोध कैसे मिटेगा। इसका उत्तर यह है कि इस मन्त्रका अर्थ आपने नहीं विचारा। इससे यह भ्रम पड़ गया। सुनियें यह मन्त्र इस प्रकार है ॥ सपर्यगाच्छुक्रम कायमव्रणमस्नाविरं शुद्धम पाप विद्धम्। कविर्मनिषी परिभूः स्वयंभूर्याथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधा-

तस्तथा। उक्ता गुणा न शक्यन्ते वक्तुं वर्ष शतैरपि ॥ अर्चावतारके विषयमें मैं भी उद्देशसे गुणोंको कहता हूं यथार्थ सैकड़ों वर्षों तक कहनेपर भी पूर्ण रूपसे कोई नहीं कह सकता है। यह भगवत्का वाक्य है। इसीसे कहा है कि ॥ गुण पूर्ति अर्चावतारमें है ॥ ४१ ॥

अब प्रबन्धकर्ता यह कहते हैं कि दिव्य सूरिगणने बहुत स्थलमें अर्चावतारमें प्रपत्ति की हैं।

मूल॥ दिव्यसूरयो बहुस्थलेषु प्रपत्तिं चार्चावता-
रेऽकुर्वन् ॥ सू० ४२॥

अर्थ—[दिव्यसूरयः] दिव्यसूरि लोगोंने [बहुस्थलेषु] बहुत स्थलोंमें [प्रपत्तिम्] भगवत्की प्रपत्तिको [अर्चावतारे] अर्चावतारमें (अकुर्वन्) किये हैं (च) चकारसे परव्यूह आदिकमें कहीं कहीं प्रपत्ति किये हैं। जैसे श्रीशठकोपसूरि कहे हैं कि ॥ उपायतया आप अपने चरणोंको ही मुझको दिये हैं ॥ ॥ उन चरणोंको शरणतया स्वीकार करनेवाले ॥ ॥ हमारे स्वामीके चरणोंमें कल्याणको प्राप्त हुए कुरुकी पुरीका निर्वाहक शठकोप ॥ ॥ आपके चरणोंके नीचे सम्यक् प्रवेश करता हूं ॥ इन वाक्योंसे मालूम होता है कि अर्चावतार हीमें प्रपत्ति किये है। और ॥ जन्म प्रकार ॥ इस एव ही दशकमें श्रीकृष्णावतारमें प्रपत्ति की है। और श्री परकालसूरि भी कहते हैं कि ॥ हे नैमिषारण्य वासिन् स्वामिन् दास आपके चरणोंको प्राप्त हुआ है ॥। ॥ हे परिमल पूर्ण श्रीवेंकटनायक नीच मैं आपको आयश्रण करता हूं ॥। ॥ कावलंबाडि दिव्य देशमें वर्तमान हे कृष्ण उपाय आप ही हो ॥ ॥ समुद्र वर्णनिविडोद्यान श्री रंगवासिन् आपके चरणयुग्मको प्राप्त हूं ॥ इन वाक्योंसे मालूम होता हैं कि यह उन्होंने भी अर्चावतारमें ही प्रपत्ति की है। और सूरि लोग भी अर्चावतार हीमें प्रपत्ति किये हैं। इस बातको उनके प्रबन्धोंमें देख सकते हैं। इसीसे कहा है कि ॥ दिव्य सूरिगणने बहुत स्थलोमें प्रपत्ति अर्चावतारमें की है ॥ ४२ ॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी अर्चावतारमें सौलभ्य आदिक गुणोंकी पूर्तिको प्रमाण सहित कहते हैं कि।

मू०-॥ "पूर्णम्" इत्युक्तत्वात्सर्वे गुणाः पुष्कलाः ॥
॥सूत्र ४३॥

पृथ्वीमें विचरनेसे कुचर वेंकटादिमें स्थित रहनेसे गिरिष्ट हैं। जिस विष्णुके बड़े तीन पाद विक्षेपमें समस्त भुवन बसते हैं ॥ २ ॥ **त्वंस्त्रीत्वंपुमानसित्वं कुमार उतवा कुमारी। त्वंजीर्णोदंडेन वंचसित्वं जातोभवसि विश्वतोमुखः ॥ अथर्व० कां० १० अ० ४ मं० २७॥** हे भगवान् आप लक्ष्मीरूप स्त्री हो। आप ही परशुराम रूप पुरुष हो। आप वामन और सनत्कुमाररूप कुमार हो। और आप मोहनीरूप कुमारी हो। आप ही वृद्धरूपसे दण्ड धारण करके अधर्मियोंको ठगते हो। आप ही प्रगट होकर विराटरूप हो ॥ २७ ॥ और देखिये शतपथ ब्राह्मणमें मत्स्यावतार का वर्णन हैं कि **मनवे ह प्रातः अवनेज्य मुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्याम वनेजनायाहरन्त्येव तस्यावनेनि जानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे सहास्मै वाच मुवाच बिभृहिमापार यिष्यामित्वेति शश्वद्भष आस तमेवंभूत्वा समुद्र मभ्यवजहारसहोवाच अपीपरं वैत्वावृक्षेनावं प्रतिबध्नीष्व ॥ शत० ब्रा० कां० १ अ० ८ ब्रा० १ कण्डिका० १—६** तक संक्षेपकर थोड़ा लिखा है कि मनुने अवनेजनके लिये जल हाथमें लिया। उनके हाथमें एक मछली आगई उसने वाक्य कहा कि तुम मुझे पोषण करो मैं तुम्हें प्रलयके जलसे पार करूंगी। फिर वह बड़ा मत्स्य हो गया। मनुने उसको समुद्रमें डाल दिया। तब उसने कहा कि मैं तेरी रक्षा करता हूं नौका वृक्षमें बांधो ॥ ६ ॥ और "कुचर" तथा "अब्जा" पहले ही कच्छपावतारको कह चुका हूं। अब श्रीवराहावतारमें प्रमाण देखिये ॥ **वराहेणपृथिवीसंविदाना सूकराय विजीहीते मृगाय ॥ अथर्व० कां १२ अ० १ मं० ४८॥** श्रीवाराह सूकररूपधारी प्रजापति ने यह पृथ्वी उद्धार की है ॥ ४८ ॥ **इयतीहवाइयमग्रे पृथिव्या सप्रादेश मात्रीता मेमूषइति वराह उज्जघानसोस्या पतिः प्रजापतिरिति ॥ शत कां० १४ अ० १ ब्रा० २ कं० ११॥** पहले यह भूमि प्रदेश मात्र प्रगट हुई उसको श्रीवाराहने उद्धार किया सो इसका पति प्रजापति हैं॥११॥ **उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ॥ तैत्ति० अ० प्र० १**

ह्रद इवार्चावतारः ॥ सूत्र ४६॥

अर्थः—(भूगत जलवत्) पृथ्वीके भीतर स्थित जलके समान (अन्तर्यामित्वम्) अन्तराजामित्व है। अर्थात प्यासे हुए पुरुषके लिये जैसे पृथिवीके भीतरका जल तुरन्त बिना खोदे हुए काममें नहीं आ सकता है और यदि उसी समय खोदा जाय तो प्यासे पुरुष मर जायंगे। वैसे ही अष्टांगयोग करके देखने योग्य अन्तर्यामित्व प्रपत्ति करनेवाले सर्वसाधारण संसारी जीवोंके लिये तत्काल प्राप्त होना दुर्लभ है। और (आवरण जलवत्) ब्रह्माण्डसे परे आवरण विरजाके जलके समान (परत्वम्) परत्व है। अर्थात् प्यासे हुए पुरुषोंके लिये जैसे बाहरका रणत या स्थित पूर्णामृत विरजाका जल काममें इस शरीरसे नहीं आ सकता है वैसे ही प्रपत्ति करनेवाले संसारी जीवोंके लिये लीला विभूतिसे परे रहने वाले परत्व तत्कालमें प्राप्त होना अति दुर्लभ है। और (क्षीरार्णववत्) क्षीर समुद्रके समान (व्यूहः)व्यूह हैं। अर्थात् प्यासे हुए पुरुषोंके लिये जैसे दुष्प्राप्य क्षीर सागर हैं वैसे ही प्रपत्ति करने वाले संसारी जीवोंके लिये तुरन्त व्यूह प्राप्त होना दुर्लभ हैं। और (प्रवहन्नदीवत्) जोरसे बहने वाली नदीके समान (विभवः) रामकृष्णादिक विभवावतार हैं। अर्थात् प्यासे हुए पुरुषोंके लिये जो नदी बहती हुई चली गई है। अर्थात् अब जल नेत्रसे नहीं दिखाई देता है। वह जल प्यासको इस समय नहीं शान्त कर सकता हैं। वैसे ही यद्यपि प्रभु श्रीरामकृष्णादि भूतलपर अवतार लिये थे परन्तु इस समय प्रपत्ति करनेवाले संसारी जीवोंके नेत्रसे नहीं दीखते हैं इससे इस समयमें विभव प्राप्त होना भी दुर्लभ है और (तत्र) वहां पर (स्थितः) स्थित (ह्रदः) तालाव (इव) के समान (अर्चावतारः) अर्चावतार हैं। अर्थात् प्यासे हुए पुरुषोंके लिये उसी स्थानमें स्थित अति निर्मल जलोंसे भरा हुआ तालाव जैसे लोटा और रस्सी पासमें नहीं रहने पर भी प्राप्त होनेपर शीघ्र ही प्यास शान्त कर देता है। वैसे ही प्रपत्ति करनेवाले सर्वसाधारण संसारी जीवोंके लिये सुलभ और भवरुजको शान्त करनेवाले अर्चावतार हैं। इसीसे कहते है कि ॥ भूगत जलके समान अन्तर्यामि हैं और आवरण जलके तुल्य पर है तथा क्षीर सागरके समान व्यूह है और बहनेवाली नदीके तुल्य विभव है तथा वहां ही स्थित ह्रदके समान अर्चावतार हैं ॥ अब इस छियालिसवें सूत्रमें बहुतसे अनादि पापसे दूषित अन्तःकरणवाले कहते है कि ईश्वर औतार लेता है इसमें वैदिक एक भी प्रमाण नहीं है इससे ईश्वरका अवतार नहीं होता

मूल-॥पूर्तिं स्वातंत्र्यं च त्यजन् सन् स्वानादर्तॄन् स्वयमादृत्य स्थितस्थलम्॥सूत्र ४५॥

अर्थ—अर्चावतार भगवान् (पूर्तिम्) अवाप्त समस्त कामत्व रूप पूर्तिको (त्यजन्) छोडता (सन्) हुआ अर्थात् इस चेतनके द्वारा समर्पित वस्तुसे तृप्त होता हुआ (च) और (स्वातंत्र्यम्) स्वरूपादि अपना अधीन होना रूप स्वतंत्रताको छोड़ता हुआ अर्थात् भक्तोंके अधीन स्वरुप और स्थितिको करता हुआ (स्वानादर्तॄन्) अपनेको अनादर करनेवालोंको (स्वयम्) अपनेसे (आदृत्य) आदरकर (स्थित स्थलम्) स्थित स्थल है। अर्चावतार भगवान् अर्चकोंके अधीन रहते हैं यह लिखा है कि ॥ तदिच्छयामहातेजा भुङ्क्ते वै भक्तवत्सलः। स्नानं पानं तथा यात्रां कुरुते वै जगत्पतिः ॥ स्वतंत्रः सन् जगन्नाथोप्यस्वतंत्रोयथातथा। सर्वशक्तिर्जगद्धाताप्यशक्त इव चेष्टते ॥ अर्चककी इच्छासे महा तेजस्वी भक्तवत्सल भगवान् भोजन करते हैं तथा अर्चककी इच्छासे स्नान पान और यात्राओंको जगत्पति करते हैं। स्वतंत्र होते हुए भी जगन्नाथ परतंत्रकी तरह रहते हैं। सर्वशक्ति होते हुए जगद्धाता असक्तकी तरह रहते हैं ॥ और सौलभ्य होनेसे अर्चावतार सबसे श्रेष्ठ हैं। यह लिखा है कि ॥ एवं पंच प्रकारोऽहमात्मनां पततामधः। पूर्वस्मादपि पूर्वस्माज्ज्यायांश्चैवोत्तरोत्तरः। सौलभ्यतो जगत्स्वामी सुलभो ह्युत्तरोत्तरः ॥ अधःपतित चेतनोंके लिये पर व्यूह विभव अन्तर्यामी और अर्चावतार इस भेदसे मैं पांच प्रकारका हूं। पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। जगत्के मालिक सौलभ्य गुणसे उत्तरोत्तर सुलभ होते है॥ इसीसे कहते हैं कि पूर्ति और स्वातंत्र्यको छोड़ अपनेको अनादर करने वालोंको आप आदर करते हुए स्थितस्थल हैं ॥४५॥

अब लोकाचार्य स्वामीजी दृष्टान्त द्वारा परव्यूहादिकको दुर्लभ और अर्चावतारको सुलभ कहते हैं।

मूल॥ भूगतजलवदंतर्यामित्वं, आवरणजलवत्परत्वं क्षीरार्णयवद्व्यूहः प्रवहन्नदीवद्विभवः तत्रास्थितो-